सगुण वैष्णव भक्त श्रीरामानुजाचार्य की सामाजिक – दृष्टि

पुष्पा बुढलाकोटी*

सारांश

श्री रामानुजाचार्य, आलवार सन्त श्री यमुनाचार्य के प्रधान शिश्य व वैश्णव भक्त थे। श्रीरामानुजाचार्य ने श्री सम्प्रदाय का प्रवर्तन कर ईश्वर को समझने के लिए अद्वैतवाद और द्वैतवाद के बीच एक बीच का अलग मार्ग निकालकर "विशिश्टाद्वैतवाद दर्शन" की स्थापना की और उन्होने अवतारी राम को अपनी विश्णु भक्ति का उपास्य देव स्वीकार किया। वे भक्ति को ही मुक्ति का साधन स्वीकार करते हैं और मानते है कि व्यक्ति को दास्य भाव से प्रभु की सेवा करनी चाहिए। ये जीव को दास व परमात्मा को स्वामी मानते है और ब्रह्मा जीव व जगत को धारण करता हुआ उसका नियमन करता है। रामानुज ने दर्शन के स्तर पर भक्ति को वैचारिक आधार प्रदान किया। वह ऐसे वैश्णव सन्त थे जिनका भक्ति परम्परा पर बहुत गहरा प्रभाव रहा। रामानुजाचार्य ने हर परंपरा जो समाज में भेदभाव पैदा करती है उसे बदलने के लिए भक्ति और मुक्ति का मार्ग बताकर भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास किया। संत श्री रामानुजाचार्य ने ''मनसा वाचा कर्मणा'' सूत्र को अपना उपदेश वाक्य बना लिया जो उनके मन में था वही वचन में था और वही कर्म में भी दिखा उन्होने हर विवाद की स्थिति को बिगड़ने से रोकने और समस्या को सुलझाने का प्रयास किया।

भक्तिकाल से आशय– भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति "भज" धातु से हुई है जिसका उल्लेख श्वेताश्वेत उपनिषद में मिलता है। जिस समय उत्तर भारत में सिद्धो और नाथों की अन्त साधना प्रचलित हो चुकी थी उसी समय दक्षिण भारत में आलवार भक्तों की भावधारा प्रवाहित हो रही थी जिसका समर्थन दक्षिण के वैष्णव आचार्यो ने भी किया। आलवारो के शिष्य उन्हें विष्णु का अवतार कहते थे। वैष्णव सम्प्रदाय में भक्ति के नवधा रूपों की चर्चा की गयी है, जिसमें स्मरण, अर्चन, वन्दन, सुमिरन, कीर्तन, पादसेवन, आत्मनिवेदन के भावों से भक्ति की जाती है। भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है जिसमें भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणाम स्वरूप भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे–धीरे लोक प्रचलित भाषाएँ भक्ति भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गयीं और वर्तमान भक्तिकालीन साहित्य की बाढ़ सी आ गयी। भक्ति की भावना वैष्णव धर्म तक ही सीमित न थी अपितु शैव, शाक्त, बौद्धऔर जैन सम्प्रदाय भी इससे प्रभावित हुआ। भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में भक्तिमार्ग का विशिष्ट स्थान है। वैदिक युग में यज्ञ के माध्यम से धार्मिक अनुष्ठान हुआ करते थे। लोग प्रायः किसी देवता की कल्पना कर उसे प्रसन्न करने के लिए यज्ञ का आयोजन किया करते थे। भक्ति ईश्वर और मनुष्य के बीच संबंध स्थापित करने का माध्यम धर्म है।

भक्तिकालीन वैष्णव धर्म– दक्षिण भारत के वैष्णव भक्तों को आलवार कहते हैं। आलवार वैष्णवों का तमिल नाम है। आलवारों ने कृष्ण और राम दोनों की आराधना की है। वैष्णव शब्द का वास्तविक अर्थ सात्विक है, जिसका सम्बन्ध विष्णु से है। इस धर्म में विष्णु पूजा का महत्व है। इसमें पंचरात्र (परमतत्व, मुक्ति, युक्ति, योग, विषय) पर भक्ति के दर्शन होते हैं। वैष्णव धर्म भक्ति प्रधान है जो योगसाधना से प्रभावित है। वैष्णवधर्म में संप्रदायों की सृष्टि आचार्यों द्वारा दार्शनिक सिद्धांतों की व्याख्या करने के कारण हुई थी। इन आचार्यों की भक्ति किसी न किसी दर्शन पर आधारित थी। सगुण भक्ति में भगवान का वास भक्त के हृदय में है और भक्त विष्णु के लीला अवतारों की भक्ति करता है।

सगुण वैष्णव भक्ति का उदय– भक्ति के उद्भव और विकास के संबंध में पर्याप्त मतभेद हैं। भारतीय भक्ति भावना का व्यापक विस्तार वैदिककाल से मध्ययुग तक हुआ और वर्तमान में भी हो रहा है। वैदिक युग में राम और कृष्ण को सगुण भक्ति का अवतारी देवता माना जाता है। गुप्तकाल में विष्णु के अवतारों की चर्चा और पूजा–अर्चना भी होती थी। इस समय के अभिलेखों में विष्णु को नारायण और वासुदेव, जगपालनकर्ता आदि नामों से इनकी पूजा की जाती थी। सगुण भक्ति का उदय तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से खिन्न और पराजित होकर हिन्दू जनता मुगल साम्राज्य के शासकों के अत्याचार से लाचार और निराश होकर ईश्वर की शरण के अलावा और कोई मार्ग न था। राम और कृष्ण की सगुण भक्ति द्वारा वह ऐसे अवतारी भगवान को अपने पास रखना चाहते थे, जो निर्बल, पीड़ित हिन्दू जनता की रक्षा कर सके। अवतारी विष्णु को जनता व भक्तकवियों ने अपना आराध्य देव बनाया और उनके शीलगुण, सौन्दर्य, मनोहर रूप को अपने हृदय में अंकित किया। इस

*शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग, डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल

प्रकार हिन्दू जनता व भक्त कवियों की यह धारणा रही कि राजनीतिक दासत्व से पीड़ित होने पर भी भक्त को शान्त और आत्मनिर्भर होने का मार्ग सगुण भक्ति के माध्यम से सुलभ हो सकता है।

शांडिल्य ने सबसे मौलिक बात यह बतायी कि भक्तिपथ सभी भक्तों के लिए समान रूप से उन्मुक्त है। भक्त भक्तिमार्ग का अनुसरण कर भगवान की भक्ति कर सकता है। उन्होंने दूसरी बात यह कही है कि जब भक्ति का उदय नहीं होता तो आत्मा जन्म–मरण के चक्र में बनी रहती है। भक्तिभाव आने पर ही भावचक्र का बन्धन कटता है।

नारद ने अपने भक्तिसूत्र में भक्ति को प्रेम पर आश्रित होने से भक्ति को प्रेमाभक्ति की संज्ञा दी है। नारद ईश्वरीय प्रेम को ही भक्ति की संज्ञा देते हैं। इस प्रेम को प्राप्त करने पर भक्त न तो कुछ चाहता है और न ही चिन्ता करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है। इस प्रेम रूप भक्ति को पाकर भक्त सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है।

वैष्णव सम्प्रदाय भक्ति के नियमः– विष्णु के अवतारों की भक्ति ने लोगों को आकृष्ट किया। भक्ति मार्ग सबके लिए खुल गया। आचार्य मिथ्याचार्य आडम्बर, पाखण्ड, कर्मकाण्ड ही कुछ कारक थे जिनके कारण भक्ति आन्दोलन को बल मिला। नियम निम्नवत् है :–

1. ईश्वर की अनुकुलता के प्रति संकल्प।
2. प्रतिकूलता के परित्याग की स्थिति।
3. अपने ईष्ट देव में पूर्ण विश्वास।
4. ईष्ट देव का गुणगान।
5. अपने ईष्ट के प्रति समर्पण का भाव।
6. दैन्यता का अभाव।
7. सदैव ऐसे भक्तों का संगत करो जिनका चित्त भगवान के चरणों में लगा हो और अपने गुरू के समान उनकी सेवा करो।
8. काम, क्रोध एवं लोभ जैसे शत्रुओं से सदैव सावधान रहो। अपनी इन्द्रियों के दास न बनो।

रामानुज के अनुसार भक्ति का अर्थ– रामानुजाचार्य के अनुसार भक्ति का अर्थ पूजा पाठ या कीर्तन–भजन नहीं बल्कि ध्यान करना या ईश्वर की प्रार्थना करना है। इनके अनुसार भगवान विष्णु ही पुरूषोत्तम हैं। वे ही प्रत्येक शरीर में साक्षी रूप से विद्यमान हैं। भगवान नारायण ही सत हैं। उनकी शक्ति महालक्ष्मी चित्त है। भगवान श्री लक्ष्मीनारायण इस जगत के माता–पिता हैं और सभी जीव उनकी संतान हैं। समाजिक परिप्रेक्ष्य से रामानुज ने भक्ति को जाति एवं वर्ग से पृथक तथा सभी के लिए सम्भव माना है।

रामानुजाचार्य की भक्ति का सार– ये आलवार सन्त श्री यमुनाचार्य के प्रधान शिष्य थे। श्रीरामानुजाचार्य ने श्री सम्प्रदाय का प्रवर्तन कर विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना की और उन्होंने अवतारी राम को अपनी विष्णु भक्ति का उपास्य देव स्वीकार किया। इनका मत था कि पुरूषोत्तम ब्रह्मा सगुण और सविशेष हैं। वे भक्ति को ही मुक्ति का साधन स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि व्यक्ति को दास्य भाव से प्रभु की सेवा करनी चाहिए। ये जीव को दास व परमात्मा को स्वामी मानते हैं और ब्रह्मा जीव व जगत को धारण करता हुआ उसका नियमन करता है। रामानुज ने दर्शन के स्तर पर भक्ति को वैचारिक आधार प्रदान किया। वह ऐसे वैष्णव सन्त थे जिनका भक्ति परम्परा पर बहुत गहरा प्रभाव रहा। इन्होंने वेदों और उपनिषदों का अध्ययन कर निम्न रचनाओं के माध्यम से भक्ति को उजागर किया–

1. वेदान्त संग्रहम्
2. श्रीभाष्यम्
3. वेदान्तदीयम्
4. वेदान्तसारम्
5. शरणागतिगद्यम्
6. श्रीरंगाद्यम्
7. श्रीवैकुण्ठगद्यम्
8. नित्यग्रन्थम्

वैष्णव मत की स्थापना में पहले समाज सुधारक के रूप में बुद्ध इस धरातल पर प्रकट हुए। उसके बाद शंकराचार्य ने उपनिषदों और वैदिक साहित्य की प्रमाणिकता को पुनर्जीवित किया। वेदों की व्याख्या में शंकराचार्य इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जीवात्मा और परमात्मा एक ही है। आगे चलकर रामानुज ने वैष्णव मत की पुनः प्रतिष्ठा की। उनका स्थान महत्त्वपूर्ण है। श्री रामानुजाचार्य बड़े ही विद्वान, सदाचारी, धैर्यवान एवं उदार थे। चरित्रबल और भक्ति में तो ये अद्वितीय थे। जब इनके गुरू

श्रीयमुनाचार्य की मृत्यु हुई तो रामानुज ने गुरू की इच्छानुसार तीन विशेष कार्य करने का संकल्प लिया जो –

1. ब्रह्मसूत्र
2. विष्णुसहस्रनाम्
3. दिव्य प्रबन्धम् टीका लिखकर पूर्ण किया।

मैं अज्ञानमोहित जनों को नारायण के चरणकमलों की अमृतवर्षा और शरणागति में लगाकर उनकी रक्षा करता रहूँगा। इतना कहते ही श्रीयमुनाचार्य की एक ऊँगली सीधी हो गयी। रामानुज ने पुनः कहा – मैं लोगों की रक्षा हेतु समस्त अर्थों का संग्रह कर मंगलमय परम तत्वज्ञान वेद और ब्रह्मसूत्र की रचना करूँगा। इतना कहते ही एक और ऊँगली खुलकर सीधी हो गयी। रामानुज ने पुनः कहा– मैं जीव, ईश्वर, जगत उनका स्वभाव तथा उन्नति का उपाय स्पष्ट रूप से करते हुए विष्णुसहस्त्रनाम की रचना करूँगा।

रामानुज के एक अन्य गुरू गोष्ठीपूर्ण एक परम धर्मिक विद्वान थे। रामानुज उनसे दीक्षा लेने और मन्त्र प्राप्त करने के लिए उनके पास गए। गोष्ठी पूर्ण ने उनके आने का आशय जानकर कहा "किसी अन्य दिन आओ तो देखा जायेगा"। इस तरह रामानुज को गोष्ठी पूर्ण ने अठारह बार लौटाए जाने के बाद गुरूदेव गोष्ठीपूर्ण ने रामानुज को (ऊँ नमः नारायणाय) का अष्टाक्षर मंत्र का उपदेश देकर समझाया– वत्स् यह परम पावन अष्ठाक्षर मंत्र जिसके कानो में पड़ जाता है, वह समस्त पापों से छूट जाता है। मरने पर वह भगवान नारायण के दिव्य वैकुण्ठ धाम में जाता है। यह अत्यन्त गुप्त मंत्र है। इसे किसी अयोग्य को मत सुनाना क्योंकि वह इसका आदर नहीं करेगा। गुरू का निर्देश था कि रामानुज उनका बताया हुआ मन्त्र किसी अन्य को न बताएं किन्तु जब रामानुज को ज्ञात हुआ कि मन्त्र के सुनने से लोगों को मुक्ति मिल जाती है तो वे मंदिर की छत पर चढ़कर सैकड़ों नर–नारियों के सामने चिल्ला–चिल्लाकर उस मन्त्र का उच्चारण करने लगे। यह देखकर नाराज होकर गुरू ने उन्हें नरक में जाने का श्राप दिया। इस पर रामानुज ने उत्तर दिया – यदि मन्त्र सुनकर हजारों नर–नारियों की मुक्ति हो जाए तो मुझे नरक जाना भी स्वीकार है। रामानुज का जवाब सुनकर गुरू गोष्ठीपूर्ण भी प्रसन्न हो गए।

वृद्धावस्था में रामानुज प्रतिदिन नदी पर स्नान करने जाया करते थे। वे जब स्नान करने जाते तो एक ब्राह्मण के कंधे का सहारा लेकर जाते और लौटते समय एक शूद्र का सहारा लेते थे। वृद्धावस्था के कारण उन्हें किसी के सहारे की आवश्यकता है यह बात तो सभी समझते थे किन्तु आते समय ब्राह्मण का और लौटते समय शूद्र का सहारा। सबकी समझ से परे था। उनसे इस विषय में प्रश्न करने का साहस भी किसी में नहीं था। सभी शिष्य आपस में चर्चा करते थे कि वृद्धावस्था में रामानुजाचार्य की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। नदी स्नान कर शुद्ध हो जाने के बाद अपवित्र शूद्र को छूने से स्नान का महत्व भी भला क्या रह जाता है। शूद्र का सहारा लेकर आए और स्नान के बाद ब्राह्मण का सहारा लेकर जाए तो भी बात समझ में आती है। पर एक दिन एक पण्डित से रहा न गया, उसने रामानाजुचार्य से पूछ ही लिया– प्रभु आप स्नान करने आते हैं तो ब्राह्मण का सहारा लेते हैं किन्तु स्नान कर लौटते समय शूद्र आपको सहारा देता है। क्या यह नियम नीति के विपरित नहीं है? यह सुनकर आचार्य रामानुज बोले – मैं तो शरीर और मन दोनों का स्नान करता हूँ। ब्राह्मण का सहारा लेकर आता हूँ तो शरीर का स्नान करता हूँ किन्तु तब मन का स्नान नहीं होता क्योंकि उच्चता का भाव पाने से नहीं मिटता, वह तो स्नान कर शूद्र का सहारा लेने पर ही मिलता है। ऐसा करने से मेरा अहंकार धुल जाता है और सच्चे धर्म के पालन की अनुभूति होती है।

रामानुज के सामाजिक सारोकारः– रामानुजाचार्य ने समाज में बड़ी सरलता से पूर्ण वैष्णव संप्रदाय की नींव डाली। श्री रामानुजाचार्य ने भक्तिमार्ग का प्रचार करने के लिए सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। इन्होंने भक्ति मार्ग के समर्थन में गीता और ब्रहामसूत्र पर श्रीभाष्य लिखा। इनका सम्प्रदाय श्रीसम्प्रदाय है, इस सम्प्रदाय की आध्य प्रवृत्तिका श्री महालक्ष्मी जी मानी जाती हैं। रामानुज ने देशभर में भ्रमण कर लाखों लोगों को भक्तिमार्ग में प्रवृत्त किया। यात्रा के दौरान उन्होंने पुराने मन्दिरों का पुनर्निर्माण कराया।

सामाजिक क्षमता की दिशा में ब्राह्मण जहां तक जा सकता था वे वहां तक गये। उन्होंने अपने श्रीसम्प्रदाय में लाखों शूद्रों और अत्यंजों को अपने मार्ग में लिया। सबको वैष्णव धर्म से परिचित कराया और उनके आचरण को धर्मानुकूल बनाया। उन्होंने ब्राह्मण तत्व के नियन्त्रणों की अवहेलना भी नहीं की। रामानुज का दिव्यप्रबन्धम् ग्रन्थ में मनुष्य की जन्मसत्ता के बजाय उसकी व्यक्तिसत्ता को प्रधानता देता है। रामानुज ने दलित भक्त के लिए भी भेद रहित व्यवहार किया। रामानुजाचार्य भारतीय सामाजिक परंपरा के मेरूदंड हैं। उनके बिना भारत के अमर इतिहास की चर्चा नहीं की जा सकती। उनका विशिष्टाद्वैतवाद दार्शनिक चिंतन अपने आप में एक संसार है जिसका आधार समानता है। रामानुज संस्कृत और तमिल परंपरा के मिलन बिंदु हैं। उन्होंने समाज में ऊँच–नीच और झोपड़ी–महल के बीच समानता के सेतु बनाए।

समाज में रहने वाले लोगों के लिए उन्होंने कठोर धार्मिक क्रियाओं को सरल और सहज बनाया। वे अपने पूरे जीवनकाल में तीन कार्यो पर युद्धरत रहे। पहला कार्य उनका अपनी परंपरा और सामाजिक समस्याओं पर विचार करना था। दूसरा कार्य – ब्रह्मसूत्रों पर वेद और उपनिषद (श्रीभाष्य) लिखते हुए वेदों को जीवन की जटिलताओं से जोड़ना। तीसरा

कार्य– भक्ति को आम जनता के लिए ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताना था। इस तरह उनका पूरा जीवन युद्धरत दिखाई देता है जिसका उल्लेख रामधारी सिंह दिनकर में अपनी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में भी किया है।

रामानुज से पहले उनके गुरू भी उस समय भक्ति के सबसे बड़े आचार्य थे परन्तु भक्ति मत को शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार रामानुज ने वेद और उपनिषदों पर आधारित ब्रह्मसूत्र भाष्य लिखकर भक्ति को पहले मोक्ष साधन के रूप में स्थापित किया। इनके भक्ति सिद्धान्त ने मानव के लिए ईश्वर प्राप्ति के दरवाजे खोल दिये। उन्होंने भक्ति और शरणागति में जाति भेद, लिंग भेद और वर्ण भेद के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ा। भक्ति को उन्होंने बौद्धिक तर्को में नहीं, बल्कि सुदृढ़ शास्त्रीय आधार पर किया। रामानुज ने समाज में यह घोषणा कर दी कि कोई भी व्यक्ति जाति या कुल से ऊँच नीच नहीं हो सकता। व्यक्ति की श्रेष्ठता तो ईश्वर के बताए मार्ग पर चलकर उसे पा लेने से ही सिद्ध होती है। भक्ति के लिए सदाचार भाव जरूरी है। आचार्य रामानुज की सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें वे जगत को मिथ्या नहीं वास्तविक कहकर उसकी उपेक्षा नहीं करते हैं क्योंकि जगत सत्य है, इसका निर्माण उन पंच महाभूतों से मिलकर बना है, जो श्रीनारायण के शरीर है।
यस्य जलं शरीरम्। यस्य वायु शरीरम्। यस्यात्मा शरीरम्।

परमात्मा नारायण इस संसार को सृष्टि अवस्था में स्थूल तथा प्रलयावस्था में सूक्ष्म रूप से सदा से धारण करते आये हैं। नारायण सगुण ब्रह्म शरीरी हैं। हमारा और नारायण का जीव–ब्रह्म का संबंध है इसलिए यह संबंध भक्ति के क्षेत्र में सनातन है। इतना ही नहीं, हमारी आत्मा भी परमात्मा नारायण भगवान का शरीर है –

यस्यात्मा शरीरम् जीव और प्रकृति से सदा विशिष्ट होने के नाते वह 'अद्वैत' तत्व विशिष्टअद्वैत त्र विशिष्टाद्वैतवाद कहलाया। यह सिद्धान्त रामानुज का प्राण है। रामानुज ने वैदिक मान्यताओं के आधार पर बताया कि लक्ष्मीनारायण संसार के माता–पिता हैं। अपने माता–पिता का प्रेम और कृपा पाना उनकी प्रत्येक संतान का धर्म है। रामानुज ने दलित, मुस्लिम सभी जाति के भक्ति को समान अधिकार दिया।

निष्कर्ष– महाभारत के बाद भारतीय समाज में विभाजन हो गया है। आज समाज में शैक्षणिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर कहीं भी समन्वय नहीं दिखता है। ज्ञान मीमांशा ने मानवीय भावभूमि का तिरस्कार करके केवल कर्म तथा ज्ञान के सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित किया है। इससे एक हजार साल पहले आचार्य रामानुज ने संपूर्ण भारतीय संस्कृतियों को जोड़कर वेदों के सिद्धान्त को यथावत रखते हुए जिस भक्तिमार्ग का उपदेश दिया वह नितान्त अद्भुत तथा गंभीर है। भारत के इतिहास में सबसे अधिक प्रभावशाली संत रामानुजाचार्य हैं। इनका दर्शन बौद्धिक, आध्यात्मिक व सामाजिक तथा व्यक्तिगत है। समाज के हर प्राणी वर्ग को दृष्टि देने का अभूतपूर्व जो कार्य रामानुज ने किया है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। मानवीय भावना को लेकर आध्यात्मिक एवं सामाजिक समरसता को प्रतिष्ठित करने के लिए रामानुजाचार्य ने ही भक्ति को वैदिक सिद्धान्तों के बीच गौरवपूर्ण रूप से स्थापित किया। महान दलित हितकारी सन्त आचार्य रामानुज आज के साधु सन्तों के लिए दर्पण हैं। आचार्य रामानुज ने ईश्वरी भक्ति के माध्यम से एक नये युग का सूत्रपात किया था। वैष्णव आलवार भक्तों ने ईश्वर प्रेम को भक्ति के क्षेत्र में सभी को समान अधिकार देकर भारतीय जन जीवन को एक दूसरे के सम्मुख लाने का प्रयास किया। इन वैष्णव भक्तों का उद्देश्य भक्ति भाव को जगाना व आस्तिकता का प्रचार करना था। भक्तिकाल के अन्य कवि जिसमें रामानन्द, मध्वाचार्य, बल्लभाचार्य, सूरदास, तुलसीदास ने समाज में भक्ति को एक नई दिशा प्रदान की। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णिम काल है। कला, संस्कृति, दर्शन, काव्य सभी दृष्टियों से यह उत्कृष्ट है। भक्तिकाल के प्रादुर्भाव ने हिन्दी काव्य को नई चेतना एवं नये रास्ते प्रदान किये हैं। इसमें दो मत नहीं है। भक्ति का सूत्रपात दक्षिण भारत से हुआ वहीं से इसका प्रचार प्रसार उत्तर भारत में हुआ था।

सन्दर्भ सूची–

1. डा नागेन्द्र, डा0 हरदयाल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशक मयूर पेपर बैक्स, ए 95, सैक्टर 5, नोएडा, प्रथम संस्करण 1973।
2. वर्मा ओंकार नाथ – हिन्दी यू0जी0सी0 / नेट / जे0आर0एफ0 / स्लैट, उपकार प्रकाशन, आगरा – 2।
3. सिंह करनैल – हिन्दी यू0जी0सी0 / नेट / जे0आर0एफ0 / स्लैट, अरिहन्त पब्लिकेशन, इण्डिया लि0 मेरठ। पृ 61,305
4. पाण्डेय सरस्वती पाण्डेय / गोविन्द – हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, प्रकाशकः अभिव्यक्ति प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृ 112,113